द्वादश सर्ग

अभियान

(हरि गीतिका/गीतिका छन्द)

सुतघात की सुन सूचना सन्तप्त हो आचार्य ने।
त्यागे सभी शस्त्रास्त्र ले वैराग्य को अविकार्य ने।
ध्यानस्थ हो बैठे नयन को भींच जब रणक्षेत्र में।
हिंसा भयावह जगी उस पल द्रुपदसुतयुगनेत्र में ।।1।।

रोका सभी ने मचा हाहाकार पर वह बढ़चला।
अतिकोप का प्रतिशोध का अविवेक का ज्वरचढ़ चला।
कर से पकड़कर पलित[1] कर आघात निज करवाल[2] से।
उन हेति विद्या[3]-निकर को सत्वर[4] मिलाया काल से ।।2।।

देख यह अवसान गुरु का हुए सब अवसन्न थे।
अश्रु आँखों में लिए सब महारथ आसन्न थे।
वीर पुरुषों के वदन से निकलता धिक्कार था।
नतानन[5] नर[6] रो रहा था विपुल लज्जा भार था ।।3।।

अब कौन हो नायक चमू[7] का प्रश्न यह सुविचार्य था।
कुरु शिविर में गुरुघात से चिन्तित बड़ा हर आर्य था।
कहने लगे गुरुपुत्र हे कुरुराज तुम धीरज धरो।
नायक बनाओ कर्ण को यह नवागत संकट हरो ।।4।।

---

1. पके हुए केश; 2. तलवार; 3. शस्त्र विद्या के भण्डार; 4. शीघ्र; 5. शिर झुकाए; 6. अर्जुन; 7. सेना।

शक्र[1] सम के विक्रमी दुर्वार हैं यमराज से।
शस्त्रधर यह शोभते लङ्केशजित रघुराज से।
वाहिनी नायक कुशल शिवपुत्र[2] सम राधेय हैं।
शौर्य इनका गेय बल कौशल सदा अज्ञेय हैं ॥5॥

वीर हों पाण्डव भले ही कर्ण अपराजेय हैं।
किरीटी[3] वध में सुसक्षम मात्र अब राधेय हैं।
तब कहा कुरुराज ने सेना प्रमुख अङ्गेश[4] हैं।
कहा वृष ने विजय में अब कुछ प्रहर ही शेष हैं ॥6॥

शौर्य बल लाघव कुशलता दिव्य अस्त्र प्रयोग में।
लक्ष्य बेधन क्षिप्रता में मन्त्र के विनियोग में।
व्यूह रचना में प्रवर नर से स्वयं को मानता।
किन्तु अपनी न्यूनता भी मित्र मैं हूँ जानता ॥7॥

यदि कहीं मिलता मुझे भी कृष्ण जैसा सारथी।
तो न टिकता निमिष को भी दृप्त मेरा प्रतिरथी।
पथ्य[5] होगा यदि मिले सारथ्य मुझको शल्य का।
कहा वृष ने हे सखे यह मार्ग है साफल्य का ॥8॥

चुभ गया प्रस्ताव उर में तप्त अतिशय शल्य[6] सा।
कर्म यह निन्दित करेगा क्या महारथ शल्य सा।
क्या बुलाया था मुझे सहने इसी अपमान को।
हाँकने में लगाते हो सूतसुत के यान को ॥9॥

अति विनययुत वचन तब बोले सुयोधन शल्य से।
मद्रपति[7] तुम ही बचा सकते हमें वैफल्य से।
बल बुद्धि में सारथ्य में तव कीर्ति कृष्ण समान है।
तुमसा सहायक प्राप्त कर मुझको बड़ा अभिमान है ॥10॥

---

1. इन्द्र; 2. कार्तिकेय; 3. अर्जुन; 4. कर्ण; 5. हितकारी; 6. काँटा; 7. मद्र देश के राजा शल्य।

प्रीत[1] हो तब अङ्गपतिसारथ्य[2] अङ्गीकृत[3] किया।
बल प्रमुख वसु को सभी ने हर्ष से स्वीकृत किया।
उदयगिरि आरूढ़रवि सा कर्ण रथ पर चढ़ चला।
गर्जना करता हुआ कुरुबलजलधि तब बढ़ चला ॥11॥

द्रौणि[4] कृप कृतवर्म के रथ भी बढ़े तब वेग से।
और दुःशासन सुयोधन काल के थे मेघ से।
पहुँच कर रणभूमि वसु ने व्यूह की रचना करी।
शँख ध्वनि फिर हो उठी अति पाण्डवी सेना डरी ॥12॥

हुआ युद्ध आरम्भ तभी वह
बोला बली सुयोधन।
सखा बनो अरिसूदन[5] हो मम
चिन्ता का अपनोदन[6]।
अब भी जीवित हैं ये पाण्डव
मरे हमारे भाई।
भीष्म द्रोण से भी बढ़कर तुम
करना आज लड़ाई ॥13॥

(तूणक वृत्त)

धृष्ट[7] धृष्टद्युम्नछिन्न उत्तमाङ्ग[8] अङ्ग से।
कुम्भजात[9] प्राण आशु[10] ही उड़े विहंग से।
आज अङ्गराज दीर्घ वाहिनी प्रधान हो।
घोर कृत्य के तुरन्त शोध[11] का विधान हो ॥14॥

(शल्य)

सूत में बना खड़ा विचित्र खेल भाग्य का।
है विधान माननीय कौरवेन्द्र प्राज्ञ[12] का।
सूतपुत्र है रथी विशेष शल्य सारथी।
जो रहा महारथी बना विडम्बनापथी ॥15॥

1. प्रसन्न; 2. कर्ण का सारथी बनना; 3. स्वीकृत; 4. अश्वत्थामा; 5. शत्रु संहारक; 6. दूर होना; 7. ढीठ; 8. शिर; 9. द्रोण; 10. शीघ्र; 11. बदला परिमार्जन; 12. ज्ञानी।

आज्ञा दो हे सेनापति ले
चलूँ कहाँ पर स्यन्दन[1]।
किस योद्धा का प्रथम करोगे
सूतपुत्र अभिनन्दन।
नकुल और सहदेव उपस्थित
पहले इनसे लड़लो।
नर से रहना दूर नहीं तो
लम्बी राह पकड़लो ।।16।।

बल विक्रम अवतार उधर है
भीषण भीम उपस्थित।
जिसने कौरव शूर बहुत से
किए नाकपथ[2] प्रस्थित।
रहे देखते विगतप्रभ तुम
मरते सखासहोदर।
क्षपितसार[3] फिर से मत होना
देखो खड़ा वृकोदर[4] ।।17।।

गाण्डीवी[5] वह रहा कपिध्वज[6]
अनुपम पुत्र पृथा का।
है सविष्णु प्रभविष्णु[7] सुशोभित
कारण शत्रु व्यथा का।
जिसके बाण अमोघ ओघ
बल का रोचिष्णु[8] पुरुष है।
यम का बनता अतिथि डालता
जिस पर दृष्टि सरुष[9] है ।।18।।

ले निशात[10] नाराच[11] कर कर अधिज्य[12] इष्वास[13]।
बोला वृष[14] रथ ले चलो धर्मराज[15] के पास ।। 19।।

---

1. रथ ; 2. स्वर्ग; 3. जिसका बल क्षीण हो गया है; 4. भीम; 5. अर्जुन; 6. अर्जुन; 7. प्रभावशाली; 8. कान्ति युक्त; 9. क्रोध युक्त; 10. पैना; 11. बाण 12. प्रत्यञ्चा चढ़ा; हुआ; 13. धनुष; 14. कर्ण; 15. युधिष्ठिर/यमराज।

(शल्य)

हुआ विरागी मन उठा जीवन से विश्वास।
स्वतः आज जो जा रहे धर्मराज के पास ।।20।।

(कर्ण)

सूतपुत्र के सम्बोधन पर करता मन ही मन उपहास।
शल्यवदन से प्रसृत हो रहा जगका बस अज्ञान विलास।
बोला कर्ण सुनो क्षत्रियवर करो बन्द अपना आलाप।
ज्ञात मुझे है सार भीम का और पार्थ का पूर्ण प्रताप ।।21।।

शान्त निहारो मेरा लाघव और वीरता रूप विशुद्ध।
मम परिचय प्रकाश हित देखो हुआ उपस्थित भीषण युद्ध।
क्षात्र धर्म का जो परिपालन करते वे ही क्षत्रिय सत्य।
अन्य विगुण मानी रहते हैं कुल सम्बन्धों के ही भृत्य ।।22।।

सूतपुत्र तुझको रहा बल का मिथ्या भान।
हित साधक मेरे वचन सुन तजकर अभिमान।
सुन तजकर अभिमान गरुड़ से कभी लड़ा है।
सर्प या कि लघुश्वान व्याघ्र की ओर बढ़ा है।
झपटा कभी श्रृगाल क्रोध में भर मृगपति[1] पर।
मुझको आती दया आत्मघाती तव मति पर ।।23।।

गुणवानों के गुणों को जानें सदा गुणज्ञ।
नीच व्यक्ति संकुचितधी रहते आये अज्ञ।
रहते आये अज्ञ अँधेरे में जाता है।
रवि का खर आलोक न कौशिक[2] सह पाता है।
तुम सन्धानी कुशल वचन के ही बाणों के।
हम पारखी अचूक पार्थ धनु गुण बाणों के ।।24।।

---

1. सिंह; 2. उल्लू।

यथा नाम गुण भी तथा होते वे नर मान्य।
पाण्डव मातुल आप भी मनुज नहीं सामान्य ॥25॥

मुख में है आयुध विषम यद्यपि प्रग्रह[1] हाथ।
मिलता तुमसे वीर का बड़े भाग्य से साथ ॥26॥

शल्य से शत व्यक्ति रिपु गुणगान भी करते रहें।
बन्धु या आत्मज भले रणक्षेत्र में मरते रहें।
वज्रभय से अचल भी त्यागें भले ही अचलता।
मुझे निश्चय से डिगाने में किसे है सफलता ॥27॥

इन्द्र भी आकर सहायक बनें अब यदि पार्थ के।
स्वयं यम बाधक बने यदि कर्ण के पुरुषार्थ के।
कृष्ण का साहाय्य भी नरभीति हर सकता नहीं।
काल भी रण विमुख मुझको शल्य कर सकता नहीं ॥28॥

वीर छन्द

वह निदाघ[2] के सूरज जैसा करता था दल को अतितप्त।
आज बड़े योद्धा भी निज को मान रहे थे बस अभिशप्त।
व्यक्त हो रहा बाणों से ही जीवन भर का ज्यों आक्रोश।
या कि हुताशन[3] ही मानो रत पाने को अपना परितोष ॥29॥

क्या आये हैं आज रणांगण बीच उतर नभ से हरिदश्व[4]।
पुञ्जीभूत हुआ है सारा तेज जलाने क्या यह विश्व।
किन्तु सारथी अरुण कहाँ है और नहीं हय भी हैं सप्त।
कौन किन्तु हाटकवर्णी[5] बैठा स्यन्दन पर योद्धा दृप्त ॥30॥

रच कर नीलाम्बर में देखो एक शुभ्रतर बाण-वितान।
वीरलोक में छत्र तानकर स्थापित करता है पहचान।
सृजित रौद्र संगीत कर रहा प्रतिक्षण होती गुण टङ्कार।
लौह फलक शर के टकराते और गूँजती थी झङ्कार ॥31॥

---

1. लगाम; 2. ग्रीष्म ऋतु; 3. अग्नि; 4. सूर्य; 5. स्वर्ण के समान वर्ण वाला।

बाण नहीं थे छोड़ रहा था तप्त करों के जैसे जाल।
क्षण-क्षण हो बहुरूप विहरता उन पर बैठा जैसे काल।
त्राणयुक्त भी शीश वैरि के होते थे ग्रीवा से छिन्न।
आशुग[1] के प्रवेश से मस्तक होते थे करियों के भिन्न ॥32॥

करने लगा सोमकों का पाञ्चालों का जब वह संहार।
द्रुपदात्मज बोला आगे बढ़ अब तू बन यम का आहार।
फेंकी गदा बाण भी छोड़े तोमर और शक्ति का पात।
विफल किए उस वीर कर्ण ने और किया इषु का आघात ॥33॥

घायल हो पाञ्चाल फिरा सत्वर ही रण से किया प्रयाण।
लिए नहीं धर्मज्ञ कर्ण ने रण से विमुख वीर के प्राण।
भीष्म द्रोण भी कर न सके थे इतना भीषण नर संहार।
दशा देख पाण्डव सेना की निश्चित सी लगती थी हार ॥34॥

है अक्षय तूणीर वीर का बाण नहीं होते क्या रिक्त।
अविरत करता वैरि रुधिर से धरणी का मस्तक अभिषिक्त।
मिलकर रक्त मृत्तिका से था बना जा रहा गाढ़ा पंक।
कर्ण किन्तु पाण्डव-दल घुसकर काट रहा अरि को निश्शंक ॥35॥

हाहाकार मचा पाण्डव दल गजदल करता था चिक्कार।
और स्वयं के हेतु निकलता वीरों के मुख से धिक्कार।
आगे बढ़ने का हर उद्यम बार-बार होता था व्यर्थ।
मानो मनुज नियति के आगे निज को पाते थे असमर्थ ॥36॥

बधिर शिञ्जिनी[2] का रव करता काल यन्त्र बनता कोदण्ड[3]।
शरमोचन की लीला करते और फूलते थे भुज दण्ड।
घर्घर कर बढ़ रहा जैत्ररथ वेग तीव्र अति ही दुर्वार।
अगले ही क्षण दिखता था बस गतप्राणवपु[4]—पारावार ॥37॥

---

1. बाण 2. प्रत्यञ्चा; 3. धनुष; 4. निर्जीव/शव;

मानस पर मद्रेश[1] दुर्वचन पुनः-पुनः पाते वैफल्य।
आत्मरूप परिचय पाकर ज्यों मिला यती को था कैवल्य।
जान चुका था पिता हमारे विश्वप्रकाशक तेजोपुञ्ज।
हीन भावना लुप्त हुई पाकर छिपने का एक न कुञ्ज ॥38॥

तभी सामने भीमाग्रज[2] को देख उपस्थित विहँसा कर्ण।
आ पहुँचा देखो विचित्र यह टकराने लोहे से स्वर्ण।
तुम अजातरिपु कहलाते हो रण में लड़ने आए आज।
कुछ तो दिखलाओ कौशल यदि रखना है गुरुवर की लाज ॥39॥

क्रुद्ध हुए वे लगे छोड़ने तान शरासन तीखे तीर।
तत्क्षण उनको काट गिराता वसुधा का वह अनुपम वीर।
कटा धनुष जब शूल किए फिर महावेग से थे प्रक्षिप्त[3]।
उनको कटता देख मलिनता आनन[4] पर होती थी लिप्त ॥40॥

लिया खड्ग जो हाथ किया खण्डित मुस्काता था वह कर्ण।
आत्मग्लानि से और भीति से आज युधिष्ठिर हुए विवर्ण[5]।
आया दौड़ फँसाकर बोला ग्रीवा में कठोर कोदण्ड[6]।
करो ग्रहण मुनिवृत्ति छोड़कर क्षत्रियत्व का यह पाखण्ड ॥41॥

रण में अस्थिर किन्तु युधिष्ठिर है प्रसिद्ध जग में अभिधान[7]।
हुए पराजित आज सूत से छोड़ो अब कुल का अभिमान।
नहीं जूझना उचित हुताशन[8] से इतना तो सीखो प्रज्ञ।
करो यज्ञ जाकर अरण्य में रण की विद्या से यदि अज्ञ ॥42॥

तत्वज्ञान से नहीं जीतता कोई यती कठिन संग्राम।
मानस रण में ही जय होती करता वश में इन्द्रिय-ग्राम।
जाओ शौर्यहीन मानव से लड़ना नहीं हमारा कर्म।
चले अनाहतदेह किन्तु वचनों से छिन्न हुआ था मर्म ॥43॥

---

1. शल्य; 2. युधिष्ठिर; 3. छोड़े; 4. मुखमण्डल; 5. कान्तिहीन; 6. धनुष; 7. नाम; 8. अग्नि।

स्तब्ध रह गए वे क्षण भर को बोध हुआ तब किया प्रयाण।
लज्जा-सिन्धु निमग्न सोचते नहीं लिए क्यों मेरे प्राण।
कैसे मिले त्राण इससे यह योद्धा ठहरा परम अजेय।
पूरा होगा इसके रहते कैसे पाण्डव दल का ध्येय ।।44।।

विस्मित हुए शल्य तब बोले यह कैसी क्रीड़ा है आज।
जिसको बन्दी करने में असफल ही होते भारद्वाज[1]।
उस करगत[2] अरि को भी तुमने कौतुक करके कियाविमुक्त।
सूतपुत्र आचार तुम्हारा लगता मुझको बुद्धि वियुक्त ।।45।।

हँसकर बोला कर्ण निरायुध[3] पर राधेय न करता वार।
सह्य सभी कुछ है इस जन को किन्तु नहीं किल्विष[4] का भार।
नीतिमाल्य को फेंक विजय का हार न मुझको है स्वीकार्य।
मरण उपस्थित हो तो भी आश्रय अधर्म का है परिहार्य ।।46।।

बढ़ा जैत्र स्यन्दन[5] कुछ आगे सम्मुख पाया नकुल खड़ा।
देख कर्ण को क्रोधित होकर गरजा धनु पर बाण चढ़ा।
तू है नकुल अकुल मैं भी हूँ दोनों में कुछ तो है साम्य।
बोला कर्ण करूँ आकुल ही मृत्यु नहीं है तेरी काम्य ।।47।।

बाणों का प्रत्युत्तर देकर किया आशु[6] पाण्डव निश्शस्त्र।
देख त्रस्त फिर उसको छोड़ा नहीं अन्य कोई भी अस्त्र।
याद आ गए ममता की प्रतिमा के वे लोचन उच्छून[7]।
करके नमन सहित श्रद्धा के अर्पित किया तृतीय प्रसून ।।48।

बाण-शृंखला ही वासुकि थी और मन्दराचल था जैत्र।
एकाकी वह मन्थन करता अर्णव बना महाकुरुक्षेत्र।
पड़ा मेदिनी नाम धरा का मधुरिपु[8] का था यही प्रताप।
शविनी होगा नाम उचित अब सोच रहे हरि मन में आप ।।49।।

---

1. द्रोणाचार्य; 2. हाथ आए हुए; 3. नि:शस्त्र; 4. पाप; 5. रथ; 6. शीघ्र; 7. सूजे हुए; 8. विष्णु।

चार रत्न काढ़े जलनिधि से किए विहँस माता को दान।
नहीं वारुणी[1] की इच्छा थी मन में कहाँ रहा अभिमान।
अभ्रमुवल्लभ[2] की न कामना नहीं चाहिए मन्द गयन्द[3]।
उच्चैःश्रवा[4] अश्व से मेरा श्रेष्ठ परम है घोटक—वृन्द ॥50॥

जयलक्ष्मी की ही इच्छा है हरि ही किन्तु उपस्थित यत्र।
प्राप्ति कठिन है किन्तु वीर की एक वही है सत्य कलत्र[5]।
और हलाहल परिभव का भी करना पड़ा मुझे यदि पान।
जब तक रुधिर किन्तु है वपु में सतत् चलेगा यह अभियान ॥51॥

आशुतोष[6] को शस्त्र हेतु ही किया धनञ्जय ने था हृष्ट।
किन्तु देखकर वीर कर्ण को वे होते थे मन में तुष्ट।
मैंने गरल पिया जीवन में एक बार वह भी आकण्ठ।
यह जीवन भर का विषपायी पीता नित्य गरल आकण्ठ ॥52॥

(तूणक वृत्त)

देख पुत्र का प्रताप हृष्ट भानु थे महा।
भान काल का हुआ न यान था रुका रहा।
मान आज है रखा सुपुत्र सूर्य वंश का।
देवराज[7] कार्य देख लें मदीय अंश का ॥53॥

हास्य देख कृष्ण का सचेत हो उठे जभी।
सप्तसप्ति[8]-कालक्षेप ज्ञात हो गया तभी।
अस्त-अद्रि[9]-सानु पार आशु ही चले गये।
त्रस्त पाण्डवीय सैन्य धन्यवाद ले गये ॥54॥

□□

1. मदिरा; 2. ऐरावत हाथी; 3. हाथी; 4. घोड़ा जो समुद्र मन्थन से निकला; 5. पत्नी; 6. शिवजी, 7. इन्द्र; 8. सूर्य; 9. अस्ताचल।